ज़िन्दगी का सिस्टम

लेखक : आयतुल्लाहिल उज़्मा सय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी
सम्पादन : नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

क़िस्त : 11

दुंनिया में लोगों की उम्रें अलग–अलग हैं, किसी की उम्र सत्तर साल हुई तो उसे पचपन साल इबादत और भक्ति के लिए मिले और किसी की उम्र बीस ही साल की हुई तो उसको सिर्फ़ पांच साल मिले । अगर ऊपरी तौर पर देखा जाए तो दूसरा जिसे सिर्फ़ पॉच साल इबादत भक्ति के लिए मिले उसके काम उस शख़्स के बराबर कभी नहीं हो सकते जिसे इबादत भक्ति के लिए पचपन साल मिले । मगर नीयत वह चीज है जो इन दोनों में बराबरी (Balance) पैदा कर देती है । कुदरत की तरफ़ से इसको मौक़ा कम मिला, उसको ज़्यादा मगर हो सकता है कि इसे इबादत और भक्ति का जोश और साधना का वलवला उससे कई गुना ज़्यादा हो तो इसकी कम वक़्त में की गई इबादत उसकी ज़्यादा वक़्त में की गई इबादत से बेहतर होगी। यही वह राज़ है जिसे इमाम (अ0) ने इस ऐतराज़ के जवाब में ब्यान किया है कि मोमिन जन्नत में हमेशा–हमेशा रहेंगे और काफ़िर जहन्नम में सदा के लिए डाले जाएंगे ।

ये जज़ा, (फल) और सज़ा हमेशा के लिए है जबकि कामों की एक सिमटी सीमित उम्र में थे, जो ख़त्म हो गई, इमाम (अ0) फ़रमाते हैं– ''जहन्नम वाले जहन्नम में इसलिए हमेशा–हमेशा रहेंगे क्योंकि दुनिया में उनकी नीयत ये थी कि अगर वह हमेशा दुनिया में रहें तो हमेशा गुनाहों पापों में ही जिन्दगी बितायें और जन्नत वाले जन्नत में इसलिए हमेशा रहेंगे क्योंकि उनका इरादा ये था कि अगर दुनिया में वह हमेशा रहें तो बराबर ख़ुदा की इताअत और भक्ति ही करते रहेंगे। इनकी नीयतों की वजह से दोनों की सज़ा और इनाम हमेशा हमेशा रहेगा। बेशक नीयत की सच्चाई काम से मिलना चाहिए। अगर इन्सान को किसी अच्छे काम को करने के बाद पछतावा हो जाए या सकत और बस होते हुए भी अच्छे कामों को पूरा करने में सुस्ती और ढील से काम ले तो उसका काम खुद ही उसकी नीयत की कमज़ोरी का सबूत होगा। लेकिन अगर नीयत अच्छी रखे और अपने भर से कोशिश और जतन भी करे मगर ज़रिये के ना हो पाने या अड़चनों की वजह से वह उस काम को पूरा न कर पाए, तो अल्लाह के यहाँ से उसकी 'नीयत' पर सवाब दिया जाएगा बल्कि ज़मीर वह चीज़ है जिसकी वजह से अगर इन्सान के अन्दर सच्चा भाव और पूरा एहसास व वलवला हो तो बहुत से उन कामों का जिनका समय बीत चुका है, इन्सान अपने अन्तःकरण् की वजह से उसके सवाब में साझी होगा। आप इस बात को इमाम (अ0) की इस बात से समझ सकते हैं, जिसे इमाम अमीरूल मोमनीन (अ0) ने उस वक़्त फ़रमाया जब जमल की जंग में ख़ुदा ने उनको विजय प्रदान की और आपके साथियों में से एक ने आपसे कहा कि ''मुझे आरज़ू है कि काश मेरा भाई वह शख़्स हमारे साथ होता और वह देखता कि ख़ुदा ने (हमें) किस तरह आपके दश्मन पर कामयाबी अ़ता की है, ''तो आपने फ़रमाया –'' *अ हुआ अख़ीका मअ़ना*'' ''क्या तुम्हारा भाई हमारे दोस्तों में से है? उसने कहा कि हां वह आपके दोस्तों में से है । हज़रत (अ0) ने फ़रमाया – '' तो फिर ख़ुदा की क़सम वह मेरे साथ था, और हमारे साथ हमारे सेनादल में बहुत से वह लोग थे जो अभी मर्दो के सुल्ब पीठ में और औरतों के पेट में हैं, वक़्त उनको बाहर सामने लायेगा और ईमान विश्वास को उनके द्वारा ताक़त मिलेगी ।

ये जो आपको शिक्षा दी गई है कि आप कर्बला की घटना के याद आने पर कहिये कि –

''या लैतना कुन्ना मअ़–कुम फ़न्–फ़ूज़ फ़ौज़न अ़ज़ीमा ''

काश हम आप के साथ हाते और महान कामयाबी की शोभा पाते। '' ये सिर्फ़ (शब्द) ही शब्द नहीं हैं बल्कि अस्ल में दिल में उस तमन्ना का पैदा करना है और इस जज़्बे भाव और वलवले का नतीजा

ये है कि आप उस सवाब में भागी हों, मगर याद रखना चाहिए कि अगर दिल में उस महान संग्राम (कर्बला) में भाग लेने का जज़्बा है तो वह कर्म से ही साबित हो सकता है कि हमारे सामने जो दीनी मसले आएं उनमें अपने फर्ज़ का एहसास करें, चाहे उनमें कितनी ही कड़ाई और कष्ट क्यों न हो, लेकिन अगर मामूली–मामूली से इम्तेहान में हमारे पैर लड़खड़ा जाते हैं (यानी जरा सी कठिनाई में हम अपने फर्ज़, कर्तव्य को भूल जाते हैं) तो कभी भी ये नहीं माना जा सकता कि हमारे दिल में कर्बला जैसे महान संग्राम में भाग लेने का सही वल्वला और जोश है, इस सूरत में ये सिर्फ़ ज़बानी बातें होंगी जिनका न कोई फ़ायदा है और न कोई नतीजा ।

इबादत (भक्ति) का मक़सद

मैने कहा कि नीयत में दो चीज़ें हैं। कौन सा काम कर रहा है ? और किसके लिए कर रहा है। पहली चीज़ तो आसान है लेकिन दूसरी चीज़ बहुत कठिन, इसमें कम से कम जो चीज़ ज़रूरी है वह ये कि दुनिया का कोई मक़सद नज़र में ना हो या फिर काम ख़ुदा के अलावा किसी और की चाहत पाने के लिए न हो, लेकिन उसके आगे की बात ये है कि आख़िरत का कोई मक़सद नज़र में हो यानी आख़िरत के सवाब का पाना हो या अज़ाब से बचाव, जहां तक अ़मल के सही होने का सवाल है ये नहीं कहा जा सकता कि इससे इबादत ग़लत हो जाएगी, क्योंकि कुर्आन मजीद में सवाब व अज़ाब, जन्नत व जहन्नम का बयान इसलिए है कि कमज़ोर जी वालों को अ़मल के लिए आमादा किया जा सके । ये ख़ुदावन्दे आलम का एक करम है कि उसने इन चीज़ों के ज़रिए इबादत से हमकों क़रीब किया है। अगर इबादत के वक़्त इन चीज़ों का मद्देनजर होना नाजाएज़ होता और अ़मल होता तो इन चीज़ों का बयान करना और ये खुश करने वाले (जन्नत के) वादे या अज़ाब का डर, खुद दया व एहसान के ख़ेलाफ होता, क्योंकि कुदरती तौर पर इन्हीं चीज़ों के बयान की बदौलत हमारे मन में ये ख़याल ज़्यादा पैदा होते हैं, अगर ऐसा होता तो हमारे कामों के ग़लत होने की वजह ख़ुदा होता ।

बेशक काम की ऊँचाई और कमाल ये है कि इस नरह के सही मक़सद भी इन्सान के सामने हों और वह काम को सिर्फ़ 'ख़ुदा की मरज़ी पाने' के लिए करे। ये बहुत ऊँचा दरजा है जहां तक हर इन्सान नहीं पहुंचता है ।

अमीरूल मोमेनीन (अ0) ने इसको इन शब्दों में बयान किया है :– ''एक गुट वह है जो ख़ुदा की इबादत भक्ति सवाब की उम्मीद मे करता है, ये व्यापारियों की सी इबाादत है और एक गुट वह है जो सज़ा के ख़ौफ़ से ख़ुदा की इबादत करता है, ये गुलामों की सी इबादत है, और एक गुट वह है जो सिर्फ़ उसकी नेमतों का लेहाज़ करते हुए ख़ुदा की इबादत करती है, ये आज़ाद लोगों की इबादत है।'' इसी को आपके बाद दूसरे इमामों (अ0) ने अपने–अपने लफ़जों में बयान किया है। इमाम जाफ़रे सादिक़ (अ0) फ़रमाते हैं :–'' इबादत तीन क़िस्म की होती है, कुछ वह लोग हैं जो ख़ुदा की इबादत डर के मारे करते हैं, ये गुलामों की सी इबादत है, और कुछ लोग वह लोग है जो सवाब की चाहत में इबादत करते हैं, ये मजदूरों की इबादत है और कुछ वह लोग हैं जो ख़ुदा की मुहब्बत में उसकी इबादत करते हैं, ये आज़ाद लोगों की इबादत है और यह इबादत की बेहतरीन क़िस्म है ।''

दूसरी हदीस में इरशाद फ़रमाया है – '' लोग तीन तरह से ख़ुदा की इबादत करते हैं, एक गरोह वह है जो सवाब की ख़ाहिश में ख़ुदा की इबादत करता है ये लालचियों की सी इबादत है, और इसका नाम लालच और हवस है, दूसरे वह लोग हैं जो जहन्नम की आग के डर से ख़ुदा की इबादत करते हैं, ये गुलामों की सी इबादत है और सिर्फ़ डर का नतीजा है लेकिन मेरा रास्ता है कि ख़ुदा की इबादत हो उसकी (ख़ुदा की) मोहब्बत में । ये इज़्ज़त वाले लोगों की इबादत है''

बेशक इस तरह की इबादत वह ऊँचाई का दरजा है जो सिर्फ़ ख़ुदा के ख़ास बन्दों को ही मिलता है, यह वह बात है जिसकी वजह से अमीरुल मोमेनीन (अ0) ख़ुदा से निवेदन करते थे – '' मैने तेरी इबादत तेरी जन्नत के लालच या तेरी आग के डर से नहीं की, मैने तुझ को इबादत के लायक़ पाया इसलिये इबादत की।''

वहां नज़र में सिर्फ़ ख़ुदा की मरज़ी थी इसलिए मुनाजात (चुप दुआ) में कहते थे कि '' अगर तेरी खुशनूदी इसमें जानूँ कि तू मुझे जहन्नम की आग

में कर दे तो वह जहन्नम मेरे लिए जन्नत है। ''

इबादत में खरेपन की ज़रूरत : नीयत में खरापन बहुत ज़रूरी है, इसके मानी ये हैं कि इबादत में सिवाए 'ख़ुदा' के किसी का लेहाज़ न हो । क़ुर्आने मजीद में है *''मुखलिसी–न लहुददीन''* यानी'' मोमेनीन इबादत को खालिस (सिर्फ़) ख़ुदा के लिए अन्जाम देते हैं। ''यहां 'दीन' के मानी कहना मानना व इबादत (भक्ति) है, जैसे नमाज़ को दीन के मानी में बयान किया गया है, इसी तरह इस आयत में कि *'' व मा कानल्लाहु–लि –युज़ी–आ दी–नकुम''* यानी '' ख़ुदा तुम्हारी इबादत व कहना मानने को बर्बाद नहीं करेगा ''। खरेपन के मक़ाबले में एक चीज़ है जिसका नाम है दिखावा । इसके मानी ये है कि इन्सान किसी दूसरे को दिखाने या सुनाने के लिए इबादत करे। अब इसमें पहली सूरत तो ये है कि असली मक़सद सिर्फ़ दिखाना और सुनाना ही हो, ऐसी सूरत में वहां अल्लाह के लिये का बिल्कुल पता नहीं है मगर दूसरी सूरत ये है कि मक़सद दोनों ही चीज़ें हों यानी ये कि इस काम को वह ख़ुदा के हुक्म की वजह से कर रहा है और उसके साथ ये भी कि दूसरे लोग उसको बहुत इबादत करने वाला समझें। ये चीज़ भी काम के सही होने के उलटी है । इबादत में दिखावा ही वह चीज़ है जिसे मज़हब में छिपा हुआ शिर्क (ख़ुदा का साझी मानना) कहा गया है। ऐसे काम का कोई सवाब नहीं हो सकता ।

हदीस में है कि ख़ुदा इरशाद फ़रमाता है ''मैं बहुत अच्छा शरीक हूँ कि जब मेरे साथ किसी को शरीक कर दिया जाता है तो मैं अपना हिस्सा भी उसी शरीक ही को दे देता हूँ और मैं बस उस अ़मल को क़ुबूल कर लेता हूँ जो मेरे लिए खरा शुद्ध हो।''

ये बाहरी दिखावे का भाव अक्सर इस तरह छिपा हुआ होता है कि खुद इन्सान को भी उसका अन्दाज़ा नहीं होता। वह समझता है कि मेरे काम में कोई नफ़सानी मतलब नहीं छिपा है मगर मामूली –मामूली बातों से उसके इस ख़्याल की क़लई खुल जाती है कि इस में कितनी सच्चाई है । मान लीजिए एक आदमी नमाज़ घर में पढ़ता है तो सरसरी तौर पर बहुत तेज़ी के साथ ख़त्म कर देता, लेकिन एक–दो आदमी आ गए तो अब रूक रूक कर और ठहर ठहर कर नमाज़ पढ़ने लगता है। इसी से पता चल जाएगा कि इसमे दिखलावे का जज़्बा होता है। कोई सामने हुआ तो उसने बोल को सही अरबी उच्चारण (बोलें) से एहतियात के साथ पढ़ना शुरू कर दिया। मालूम हुआ कि वह चाहता है उसकी क़िरअत व तजवीद (अरबी पढ़ने का तरीक़ा और क़ायदा) का दिखावा (प्रदर्षन) हो । इसी तरह की बहुत सी ऐसी सूरते हैं जिनकी तरफ़ अगर इन्सान की तवज्जो हो तो उसे अपने काम की हक़ीक़त मालूम हो जाएगी ।

इस को अमीरूल मोमेनीन (अ0) ने यूँ बयान फ़रमाया है कि ''दिखावों की तीन पहचानें हैं –

1–जब लोग (सामने) हों तो काम करने में उसका खूब मन लगे।

2–और जब अकेला हो तो सुस्त हो जाए ।

3–और वह इस बात को पसन्द करता हो कि लोग हर बात में उसे सराहें।

नाम और तारीफ़ की ख़्वाहिश इन्सान के काम के लिए एक बेइलाज बीमारी है जिससे काम की खेती बिल्कुल बर्बाद हो जाती है।

बेशक अगर इन्सान का मक़सद साफ़ हो और वह अपने काम को खरेपन से सिर्फ़ 'अल्लाह' के लिए करे फिर अगर लोग उसकी तारीफ़ भी करें और उसका नाम भी हो तो ये ख़ुदा की नेमत होगी जो उसने बन्दे को दी है। इस सूरत में उसकी दुनिया भी संवर जाएगी और वह आख़िरत में भी कामयाब है ।

मज़दूरी (पारिश्रमिक) का मसला

इबादत के सही होने और काम में खरेपन की पिछली कसौटी (Standard) को देखते हुए कुछ चीज़ें ऐसी हैं जिन के सही होने के लिए देखने में तो बड़ी मुश्किल महसूस होती है, यानी वह रोज़े और नमाज़ें जो मरने वालों की तरफ़ से मज़दूरी (पैसे) देकर अदा कराई जाती हैं, ये ज़ाहिर है कि यहां काम करने वाले के लिए वह तय की गयी रक़म ही है जो उससे काम करवा रही है । ऐसे में तो उस इबादत को ग़लत मानना चाहिए और जब वह इबादत ग़लत हुई तो जिसकी तरफ़ से वह की गयी उसको फ़ायदा क्या मिला ? मगर ध्यान करने से मालूम होता है कि वह जो काम कर रहा है उसकी दोहरी हैसियत (Position) है। पहली नायब की यानी दूसरे की तरफ़ से काम कर रहा है, इस लेहाज़ से कि वह कार्यवाहक या किसी के बदले में काम कर रहा है और यह काम वह है जो सीधा उस मरने वाले से

जुड़ा है ।

दूसरी वह हैसियत है जो दूसरे की तरफ़ से उसके बदले काम करने) की वजह से इसमें पैदा होती है और इस लेहाज़ से ये वह है जिसकी ओर से काम कर रहा है यानी जो काम हो रहा है वह इसके अपने का नहीं है बल्कि उस का है जिसका बदल है और वह 'इबादत' जिसका लगाव मरने वाले की तरफ़ है वह ' इबादत 'दूसरे का बदला होना नहीं है बल्कि नमाज़ रोज़ा वग़ैरह इस तरह की इबादतें हैं। वह 'पहला' काम जो बदले होने से यह कर रहा है यानी उस रूपये की वजह से वह दूसरे की तरफ़ से काम कर रहा है, लेकिन वह नमाज़ रोज़ा जिसको ये करने वाले की तरफ़ लगाव देकर कर रहा है उसके लिए इसको एहसास है कि वह दूसरे की तरफ़ से अ़मल कर रहा है। चूँकि मज़दूरी (पैसा) लेकर दूसरे की तरफ़ से कर रहा है, इसलिये इसे बदले के होने की वजह से सवाब का हक़ नहीं है लेकिन जिस मरने वाले की तरफ़ से 'कुर्बत' की नीयत के साथ वह काम हो रहा है उसे इस का सवाब जरूर मिलेगा ।

ये भी साफ़ होना ज़रूरी है कि ये क़ज़ा (छूट जाना) का हुक्म मरे हुए की तरफ़ से दर असल एक मुस्तक़िल (Regular) इबादत है जो ख़ुदा की तरफ़ से बड़े बेटे के ज़िम्मे वाजिब की गयी है या दूसरे लोगों के लिए सुन्नत है। इससे मरने के बाद एक तरह की सहकारिता (Co-operation) और आपसी बराबरी का एहसास पैदा करना भी मक़सद है वरना वह कमी जो इन्सान से ज़िन्दगी में वाजिब के करने में हुई है वह इस क़ज़ा की वजह से बिल्कुल नज़र अन्दाज़ हो जाने के क़ाबिल नहीं है, वरना फिर तो ऐसे लोग जिनकी औलाद नेक है वह जो इस भरोसे पर कि हमारा बैटा तो हमारे बाद हमारी नमाज़ और रोज़े कर देगा और वह जान बूझ कर काम और फ़र्ज़ (धर्म) को करने में कमी करें, या जो लोग पैसे वाले हैं वह ज़िन्दगी भर नमाज़ व रोज़ा न करें और आख़िर वक़्त में ये वसीयत करें कि हमारे माल में से नमाज़ रोज़ा अदा कर दिया जाए, हरगिज़ नहीं । ये समझना हरगिज़ सही नहीं है, अपने अ़मल का हर कोई खुद ज़िम्मेदार है।

हाँ ! नेक मन के साथ अगर कोई अपने नमाज़ रोज़े के क़ज़ा का खुद ही इरादा रखता है लेकिन इत्तेफ़ाक़ से ऐसा हआ कि उसे मौक़ा ही नहीं मिला और मौत का फ़रिश्ता सामने आ गया, उसे मजबूर होकर मरते वक़्त वसीयत कर दी या औलाद से कह दिया, उस वक़्त ख़ुदा के फ़जल और दया से ये उम्मीद रखना चाहिए कि वह उसके नेक इरादे की बदौलत उसको माफ़ कर दे और उससे पूछ–ताछ न करे । मगर इन्सान के लिए अपने फ़र्ज़ को अदा करने में जान बूझ कर कमी करना हरगिज़ माफ़ी के क़ाबिल नहीं है और ख़ुदा की अदालत में वह ज़रूर सज़ा का मुस्तहक़ या पात्र है। दूसरी चीज़ जिसका लेहाज़ ज़रूरी है वह है पेशनमाज़ी, ज़ाकिरी, दीनी मदरसों में पढ़ाना और ऐसी चीज़ों की उजरत (पैसे) लेकर पूरा करना जो दीनी फ़र्ज़/कर्तव्य से जुड़ी हैं।

इस सिलसिले में यह बात तय है कि वाजिब कामों पर उजरत लेना हराम (निषेध) है, जैसे कोई पॉच वक़्त की नमाज़ मज़दूरी लेकर पढ़े तो ये मज़दूरी नाजाएज़ होगी और हराम पैसा कहलायेगा। इसी तरह वाजिबे किफ़ाई (जो सब पर वाजिब हो मगर कोई कर दे तो दूसरों पर से वाजिब हट जाय। अगर कोई न करे तो सब को गुनाह/पाप होगा) जैसे ग़स्साली (मुर्दे को गुसल देना) क़ब्र खोदना और नमाज़े जनाज़ा, इन तमाम चीज़ों को उजरत लेकर अदा करना सही नहीं है क्योंकि ये हर एक पर वाजिब है, और जो भी इन्हें कर दे वह एक फ़र्ज़ और कर्तव्य अदा करता है।

इसी तरह जब जान बचाने का मामला हो तो 'डाक्टरी' भी इसी मसले में आ जाती है। यानी कोई ऐसा मौक़ा जहां उसी एक डाक्टर की राय और उसके इलाज ही पर मरीज़ की जान की हिफ़ाज़त निर्भर है तो वहां उस डाक्टर पर उस मरीज़ का इलाज करना बिल्कुल फ़र्ज़ है और ऐसे में मज़दूरी (पैसे) का कोई सवाल करना किसी तरह जाएज़ नहीं है। इसी तरह ख़ुदा के बन्दों को सच्चा रास्ता दिखाने की हिदायत उस हद तक कि जो वाजिब है निश्चय उस पर मज़दूरी लेना हराम है ।

(जारी......................................)

